जिज्ञासा और सीखना

शर्मिला गोवंदे माण्डलिक

"सीखने की तुलना में शिक्षण ज्यादा कठिन है क्योंकि शिक्षण के लिए जरूरी है: सीखने देना।"

मार्टिन हाईडगर (1889–1976)

एक नन्हा बच्चा रेत के गड्ढे में पहली बार खेल रहा था और उसकी माँ उस पर ध्यान से नजर रखे हुए थी। सैलफोन बजने से उसका ध्यान बच्चे से हट गया। बच्चा जो अपने परिवेश से बेखबर था, रेत को अपने हाथ में लिए हुए पूरी तरह से मग्न था। ऐसा लगता था कि रेत के अपनी मुट्ठी में से फिसलते जाने का अनुभव उसे बहुत रोमांचित कर रहा था और वह बार–बार रेत को अपनी मुट्ठी में भर रहा था। धीरे–धीरे जिज्ञासा हावी हो गई और इस बार वह अपनी मुट्ठी मुँह तक ले गया और रेत का स्वाद चखने ही वाला था कि उसकी माँ ने उसे गोदी में उठा लिया और चिल्लाई, "नहीं...खाते नहीं, रेत गन्दी होती है, गन्दे लड़के"। अगले कुछ हफ्ते तक उस बच्चे को रेत में खेलने की इजाजत नहीं दी गई, और उसे उसकी स्ट्रोलर (बच्चों को टहलाने वाली गाड़ी) में ही सीमित रहना पड़ा।

मेरी एक मित्र की लगभग तीन वर्षीय बच्ची फलों के कटोरे तक पहुँची और उसमें से उसने एक सन्तरा निकाल लिया। कुछ ही मिनटों में उसने सन्तरा छीलने के अपने प्रयास में उसे कुचल दिया। वह सन्तरे को दबाने में इतनी मग्न थी कि जल्दी ही सन्तरे का चिपचिपा रस उसके पूरे कपड़ों पर, हाथों पर और जमीन पर लग चुका था। उसे रस का स्वाद भी बहुत मजेदार लगा। वह जमीन पर फैल गए रस से कुछ देर खेलती रही और फिर जोर–जोर से रोना शुरू कर दिया। स्पष्टतः उसे चिपचिपा होने से और उसके कारण आकर्षित हो रही मक्खियों से बहुत परेशानी हो रही थी। उसकी माँ उसे बड़े आराम से बाथरूम ले गई, उसकी सफाई की और उसके कपड़े बदल दिए। बच्ची फिर से खुशी–खुशी खेलने लग गई। पर इस बार, वह फलों के कटोरे के पास नहीं गई। मेरी इस मित्र ने अपनी बच्ची को इस अनुभव से गुजरने दिया। यह ठीक–ठीक बता पाना कठिन होगा कि इस अनुभव से उस बच्ची ने क्या सीखा, पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसने खोज करने के आनन्द को जाना और सीखा।

अपने नन्हे बच्चे को स्ट्रोलर में सीमित कर देने से माँ को लगा कि वह अपने बेटे को बीमार पड़ने से बचा रही थी। माँ का ऐसा करना ठीक भी था क्योंकि दूषित रेत खाने से गम्भीर बीमारी हो सकती है और दम तक घुट सकता है। यह सब चुपचाप देखने के बाद, मैं सोच में पड़ गई, "पता नहीं यह बच्चा क्या सोच रहा होगा?", "अपने परिवेश और अपनी माँ से उसे जो भी उत्प्रेरणा मिली, उससे वह क्या सीख रहा है?", "क्या होता अगर उसने रेत मुँह में डाल ली होती – क्या उसे वह अच्छी लगती, या वह उसे थूक देता?", "क्या उसका दम घुट जाता?" दूसरी तरफ मैंने यह भी सोचा कि तब क्या होता अगर उस छोटी बच्ची को सन्तरे की खोजबीन करने से दूर रखा जाता? अगर उसकी माँ ने उससे सन्तरा छीन लिया होता तो क्या मुझे उसके चेहरे पर आए खोज के आनन्द से भरे भाव, उसकी आँखों में अचरज का भाव, सन्तरे के रस को चखने के बाद उसका चटखारे लेना, और जगह–जगह चिपचिपा हो जाने के कारण से होने वाली परेशानी, ये सब देखने को मिलते?

किसी शिक्षक की इस तरह की स्थितियों में क्या प्रतिक्रिया होगी, इससे सम्बन्धित प्रश्न मेरे दिमाग में उभरने लगे। क्या शिक्षिका बच्चे को खोजबीन करने से रोकेगी? या, क्या वह भी खोजबीन की प्रक्रिया में शामिल हो जाएगी? क्या वह बच्चे द्वारा की जाने वाली गन्दगी से घृणा दर्शाएगी? क्या वह बच्चों की सुरक्षा को लेकर चिन्तित होगी?

मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय में कायनीसिऑलॉजी की प्राध्यापक जेन क्लार्क ने 'घेरों में सीमित कर दिए गए' बच्चों के बारे में बात की है। उनके अनुसार ज्यादा से ज्यादा बच्चों को छोटी जगहों पर सीमित कर दिए जाने से लम्बे समय में उनके स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ता है। सुरक्षा के कारणों से बच्चे ज्यादा से ज्यादा समय ऊँची कुर्सियों, स्ट्रोलरों, बेबी सीटों तथा कार की सीटों पर बिताते हैं (लूव, 2005)। भारत में भी, हम विभिन्न रूपों में यह देखते हैं। शहरी समृद्ध परिवारों में, बच्चे स्ट्रोलरों, कुर्सियों और सीटों पर सीमित कर दिए जाते हैं, और शहरी गरीब परिवारों में वे छोटे–छोटे घरों में सीमित रहते हैं। बच्चे सुरक्षा कारणों जैसे दुर्घटना, चोट, अन्य व्यक्तियों और जीवों से होने वाले नुकसान की वजह से अपने परिवेश की खोजबीन करने और उसे अनुभव करने में उत्तरोत्तर असमर्थ होते जा रहे हैं।

शिक्षक भी बच्चों को उनकी मेजों तक ही सीमित कर देते हैं। बच्चों को यहाँ–वहाँ घूमने की स्वतंत्रता नहीं होती और खोजबीन करने, चीजों को अनुभव करने की स्वतंत्रता भी नहीं होती। प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के अधिकांश कार्यक्रम न सिर्फ बच्चों की जगह को सीमित कर देते हैं बल्कि उनके अनुभवों को भी सीमित कर देते हैं। तयशुदा कार्यपद्धति और तयशुदा गतिविधियों वाला एक तयशुदा पाठ्यक्रम बच्चों को जिज्ञासु और सृजनशील होने का मौका नहीं देते। शिक्षक न सिर्फ पाठ्यक्रम के कारण मजबूर रहते हैं, बल्कि 'कक्षा को संचालित' करने की जरूरत के कारण भी मजबूर रहते हैं। ऐसा करने के लिए वे सुनिश्चित करते हैं कि कक्षा में बिलकुल शान्ति रहे, बच्चे अपनी मेजों पर बैठे रहें, और शिक्षक द्वारा दी जाने वाली सारी उत्प्रेरक जानकारियों को चुपचाप सोखते रहें। ऐसे में उन्हें लगभग कोई गुंजाइश नहीं मिलती कि वे अपनी प्रतिक्रियाएँ दे सकें जिनके माध्यम से वे अपने भीतर उठते किसी भाव को व्यक्त कर सकते हैं, पहले से ज्ञात जानकारी को सबके साथ साझा कर सकते हैं या और अधिक सवाल ही पूछ सकते हैं।

हम चीजों के साथ क्या करते हैं और उसके परिणामस्वरूप हमें उन चीजों से क्या आनन्द मिलता है या क्या नुकसान उठाना पड़ता है, इन दोनों पहलुओं के बीच पीछे और आगे, दोनों ओर जाने वाला एक सम्बन्ध निर्मित करना ही 'अनुभव से सीखना' है (ड्यूई, 2003)। एक बच्चे द्वारा लौ में उँगली दे देने के उदाहरण का उल्लेख करते हुए ड्यूई कहते हैं कि, 'अनुभव तभी बनता है जब उसकी गतिविधि उसके परिणामस्वरूप होने वाली परेशानी से जुड़ जाती है।' बच्चा इस प्रकार अनुभव से यह सीख जाता है कि लौ में उँगली रखने से वह जल जाती है और इस जलने से दर्द होता है। जैसे उस छोटी बच्ची ने सन्तरे के साथ हुए अपने अनुभव से सन्तरे के रस से होने वाली चिपचिपाहट के चलते होने वाली परेशानी और तकलीफ के परिणाम को अनुभव किया और इस प्रकार यह सीखा कि अपने हाथ से सन्तरों को दबाने से हाथ चिपचिपे हो जाएँगे। उसने सन्तरे के स्वाद को भी अनुभव किया। जल्दी ही वह इस स्वाद को 'तीखे' स्वाद (दूसरे खाद्य पदार्थों से अलग स्वाद) के रूप में पहचानने लगेगी।

यह सीखना कैसे होता है इसके बारे में पियाज़े हमें अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वाकिफ कराते हैं। वह कहते हैं कि बच्चे खुद अपना ज्ञान बनाते हैं और सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। वे उनको दी जाने वाली जानकारी को निष्क्रिय होकर नहीं सोखते जाते, बल्कि खुद को हासिल होने वाले ज्ञान से ही आगे की सीढ़ियाँ बनाते जाते हैं। पियाज़े के अनुसार, किसी नए अनुभव के सामने आने पर, बच्चा पहले तो उसे अपनी वर्तमान कल्पनाओं और संरचनाओं के माध्यम से समझने की कोशिश करता है। असन्तुलन वहाँ सामने आता है जब बच्चे को लगता है कि उसकी पहले की समझ सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पा रही है। यह असन्तुलन, सामंजस्य की प्रक्रिया द्वारा दूर हो जाता है जब बच्चे की मौजूदा कल्पनाओं और संरचनाओं की जगह नई कल्पनाएँ और संरचनाएँ ले लेती हैं। बच्चा सभी संरचनाओं (नई और पुरानी) को आत्मसात, और संगठित कर लेता है और एक नई समझ पैदा कर लेता है। एक बार जब यह असन्तुलन दूर हो जाता है, तो बच्चा फिर एक सन्तुलन की स्थिति हासिल कर लेता है और इस प्रक्रिया को साम्यावस्था स्थापित करना कहते हैं।

छोटी बच्ची ने अपने स्पर्श, स्वाद, सूँघने और देखने की इन्द्रियों का इस्तेमाल यह समझने के लिए किया कि सन्तरा कैसा होता है और सन्तरे के बारे में उसे क्या पसन्द है और क्या नहीं। लेकिन छोटे लड़के को यह अनुभव नहीं लेने दिया गया। उसने अपनी माँ की अप्रिय बातों का अनुभव किया और थोड़ी–सी रेत चखने के

जोखिम के परिणामस्वरूप उसके रेत के गड्ढे में जाने की मनाही भी हो गई, छोटी लड़की ने सन्तरे के चिपचिपे रस की असुविधा झेली। पर साथ ही उसने सन्तरे के मीठे स्वाद से मिलने वाले आनन्द को भी अनुभव किया। लड़की द्वारा झेला गया परिणाम एक स्वाभाविक परिणाम था। जबकि दूसरे मामले में यह लड़के की माँ द्वारा पैदा किया गया था। यह बच्चा, अगली बार रेत के गड्ढे में खेलते हुए सम्भवतः एक बार फिर रेत खाने की कोशिश करेगा और अपनी माँ से फिर उसी तरह की प्रतिक्रिया मिलने के बाद वह रुक जाएगा क्योंकि उसे इसका परिणाम अच्छा नहीं लगा था या फिर डर की वजह से।

क्या इस बच्चे का अनुभव अलग होता यदि उसकी माँ ने इस समस्या का सामना अलग ढंग से किया होता? जिस ढंग से हम सवाल पूछते हैं या बच्चों को मार्गदर्शन देते हैं वह उनके सीखने के अनुभव को प्रभावित करता है। अडेल फेबर और एलेन मैजलिशिन ने अपनी किताब, 'हाऊ टू टॉक टू किड्स सो दैट दे लर्न (बच्चों से कैसे बात की जाए ताकि वे सीखें)', में बच्चों के साथ होने वाली बातचीत के महत्त्व को सामने रखा है। उनके अनुसार, जिस ढंग से हम अपने बच्चों से बात करते हैं, वह उनके सीखने को प्रभावित करता है। बच्चों की भावनाओं और उनकी जिज्ञासा को नकार देने के बजाय हमें उनके अनुभव को पूरी तरह खोलने में बच्चों की मदद करना चाहिए ताकि उससे सामने आने वाले परिणामों से वे स्वयं सीख सकें। बच्चे को रोकने का कठोर कदम उठाने के बजाय माँ अपने बच्चे को यह समझाने के लिए, कि रेत खाना अच्छा नहीं होता, कोई ऐसा तरीका अपना सकती थी जिसमें बच्चे को डराने की जरूरत न पड़ती। पहले, वायगॉट्स्की ने भी समझाया था कि किस तरह सामाजिक मेलजोल और संवाद बच्चे को उसकी समझ और ज्ञान विकसित करने में मदद करते हैं। उन्होंने सहायक ढ़ाँचा खड़ा करने (स्कैफोल्डिंग) की एक प्रक्रिया का जिक्र किया है जिसमें कोई बड़ा व्यक्ति या बड़ा साथी बच्चे के साथ संवाद करके उसे अपना ज्ञान निर्मित करने में मदद करता है। सामाजिक रचनावाद का उनका सिद्धान्त कहता है कि सीखना बच्चे के सामाजिक मेलजोल और सांस्कृतिक परिवेश के माध्यम से होता है।

दोनों ही बच्चे खोजबीन करने और अनुभव करने की अपनी जिज्ञासा से प्रेरित थे। लेकिन, जहाँ बच्ची को अपनी जिज्ञासा पूरी करने की आजादी मिली वहीं बच्चे के अनुभव में उसकी माँ ने बाधा डाल दी। थेरेसा विलिंघम ने टेड टाक्स (विशेषज्ञों की वार्ता का एक प्रसिद्ध कार्यक्रम) में अपने प्रारम्भिक वाक्य में ही जिज्ञासा में अड़ंगा लगाने के गहरे प्रभाव को सामने रखा, "लेकिन जिज्ञासा के बिना, खोजने या छानबीन करने की कोई प्रेरणा नहीं होती। जिज्ञासा के बिना, बच्चे के मन में उदासीनता और अरुचि पैदा हो जाती है और बिना जाँच–पड़ताल और खोजबीन की जिन्दगी के परिणामी प्रभाव (जो राजनीतिक भागीदारी, वैज्ञानिक, साहित्यिक, कला, आर्थिक तथा सामाजिक उपलब्धियों और विकास को प्रभावित कर सकते हैं) सांस्कृतिक रूप से दूरगामी हो सकते हैं।"

प्रारम्भिक बाल्यावस्था के शिक्षकों के रूप में, हम इस जिज्ञासा को बनाए रखने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं और बच्चों को अनुभव करने तथा खोज करने के मौके देकर उसके स्वाभाविक परिणामों के माध्यम से सीखने का अवसर देते हैं। यह तभी सम्भव होता है जब बच्चा छूने, स्वाद लेने, देखने, सूँघने और सुनने की अपने पाँचों इन्द्रियों का उपयोग करके बाहर से प्राप्त होने वाली उत्प्रेरक जानकारियों को व्यवस्थित रूप से आत्मसात करे और उनसे अर्थ निर्मित करे। मारिया मॉन्टेसरी जैसे प्रारम्भिक बाल्यावस्था के शिक्षकों ने पहले इन्द्रियों की शिक्षा पर और उसके बाद बुद्धि की शिक्षा पर जोर दिया। उन्होंने बच्चे के आत्मबोध पर ध्यान केन्द्रित किया और वे मानती थीं कि शिक्षक बच्चे के परिवेश का रक्षक होता है जो उसे परिधि पर से देखता है और उसकी सहायता के लिए हस्तक्षेप करता है। अन्त में, जैसा कि मारिया मॉन्टेसरी ने कहा है 'चुनौती बच्चों में ऐसी रुचि जगाने की है कि वह उनके पूरे व्यक्तित्व को उसमें संलग्न कर ले।' (मॉन्टेसरी, 1949)।

[i]Theresa Willingham, USA, 'Celebrating and Inspiring Curiosity as a Key Component in Learning', TED Conversations
http://www.ted.com/conversations/145/celebrating_and_inspiring_curi.html

References

1. Dewey, J. (2003). Democracy and Education. New Delhi: Aakar Books.
2. Louv, R. (2005). Last Child in the Woods. Newyork: Atlantic Books.
3. Palmer, J. A. (2004). Fifty Great Modern Thinkers on Education - From Piaget to the Present. London and Newyork: Routledge, Taylor and Francis Group.
4. Siegler, R. S., & Alibali, M. W. (2005). Children's Thinking (4th Edition). NJ: Prentice-Hall.
5. Cook & Cook. (2005) Child Development, Principles and Perspectives. Boston: Allyn & Bacon/Longman.
6. Miller, P. (2011). Theories of Developmental Psychology (5th Edition). USA: Worth Publishers.
7. Wertch James V. (1985) Vygotsky and the social formation of mind, Harvard University Press, USA.
8. Crain, Wlliam C. (2011) Theories of development: concepts and application, 6th edition, Pearson Education Inc.
9. Maria Montessori. (1949). The Absorbent Mind. Madras India: The Theosophical Publishing house.
10. Faber A. Mazlish E. (1996) How to talk so kids can learn.

शर्मिला गोवंदे माण्डलिक सामाजिक विकास की एक सक्रिय विशेषज्ञ हैं जिन्हें बच्चों और किशोरों के साथ काम करने का तेरह सालों से भी ज्यादा का अनुभव है। 2010 में एक दुर्घटना के बाद उन्होंने पढ़ाना शुरू किया। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के एम.ए. (ऐजुकेशन) कार्यक्रम में शामिल होने से पहले मैसूर के एक प्राथमिक स्कूल में तीन साल तक गणित और सामाजिक अध्ययन पढ़ाया। वर्तमान में वे एक विद्यार्थी होने के साथ–साथ वे अध्ययन, शिक्षक प्रशिक्षण, सीखने में कठिनाई महसूस करने वाले बच्चों की मदद करने, तथा अपने बच्चों की देखभाल करने जैसे कार्यों में भी व्यस्त रहती हैं। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी